पंचम अध्याय

जितेन्द्र श्रीवास्तव की बेटी केंद्रित कविताएं और स्त्री-विमर्श का नया पक्ष

पंचम अध्याय

समकालिन हिंदी कविता में निराला, सुभद्रा कुमारी चौहान, नागार्जुन और अनामिका आदि ने बेटियों से संबंधित सुंदर कविताएं लिखी है। इन कविताओं में कवियों की अग्रगामी चेतना का आभास मिलता है। कवियों ने अपनी चिंता और चेतना को संवेदना के धरातल पर चित्रित किया है। इस संदर्भ में कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव की कविताओं का अवलोकन करना उचित होगा। खुशी है कि कवि के असुंदर-सुंदर, इन दिनों हाल चाल, कायांतरण आदि कविता संग्रहों में बेटियों से संबंधित कविताएं तो है साथ ही, अनभैकथा तथा सूरज को अंगूठा काव्य संग्रहों में भी बेहतरीन कविताएं संकलित है। बेटियों के बहाने कवि ने आत्मीयता की तलाश की है। कवि के जीवन अनुभव और समय, समाज के संदर्भ घुल मिलकर व्यापक तथा बहू आयाम रचने में उल्लेखनीय भूमिका निभाते हैं। ध्यातव्य है कि बेटियां केवल बेटियां नहीं है, यहां कवि की जीवनदायिनी शक्तियों के रूप में पाठकों के समक्ष उपस्थित होती है। ठीक इसी तरह पिता महज एक शब्द नहीं है। बिचारा नहीं है, ब्रह्मा है।

हिंदी कविता के 1000 वर्ष के इतिहास में कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव पहले कवि है। जिन्होंने बेटियों को ध्यान में रखकर पिछले 23 वर्षों में 23 कविताएं लिखी है। इतनी संख्या में और काल विस्तार में हिंदी के किसी भी दूसरे कवि की कविताएं बेटियों पर नहीं मिलती है। हिंदी कविता में स्त्री के बेटी रूप को अब तक विषय की व्यापकता तथा विविधता नहीं प्राप्त हुई थी। कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव ने अपने कवि जीवन के शुरुआती दिनों से लेकर आज तक निरंतर इस विषय पर कविताएं लिखी है। 1996 से लेकर 2018 के बीच 23 वर्षों में लिखी गई ये 23 कविताएं अपने भीतर पर्याप्त काल विस्तार को भी समेटती है। ये कविताएं किसी एक झटके में नहीं लिखी गई है। बल्कि धीरे-धीरे परिपक्व होती हुई पाठकों के सामने आई है।

इन कविताओं की एक विशेषता ध्यान आकर्षित करती है कि इनमें कवि की अपनी बेटियों का जिक्र तो है, इनमें बेटी के प्रति सामान्य भाव बोध को भी संवेदना के साथ चित्रित किया गया है। कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव ऐसी कविताएं उस समय भी लिख रहे थे, जब वे स्वयं किसी बेटी के पिता नहीं बन पाए थे। इसीलिए उनके इस पक्ष के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि यह सब उनका महज व्यक्तिगत या पारिवारिक पक्ष है। उनकी कविताओं में बेटी की चिंता-चर्चा व्यक्तिगत, पारिवारिकता से लेकर वैश्विक स्तर पर स्त्री के लिए की जा रही बहस से भी जुड़ती है।

प्राचीन संस्कृत साहित्य में यह छंद प्रसिद्ध है- 'काव्येषु नाटकम रम्य.....'। इसमें कहां गया है कि काव्य (साहित्य) में नाटक रम्य होता है तथा नाटकों में सबसे रम्य हैं कालिदास का 'अभिज्ञानशाकुंतलम्'। 'अभिज्ञानशाकुंतलम्' में ४ अंक सबसे रम्य है और उस अंक में भी ४ श्लोक। ये चार श्लोक शकुंतला की विदाई से जुड़े हैं। उनमें ऋषि कण्व की व्याकुल भावनाओं का चित्रण है। उनमें ढेर सारी बातों के साथ कण्व यह भी कहते हैं कि मैंने शकुंतला को जन्म नहीं दिया है, केवल पाला पोसा है। फिर भी उसकी विदाई पर मेरी छाती फटी जा रही है। ऐसी परिस्थिति में गृहस्थों का क्या हाल होता होगा? जो बेटी को जन्म भी देते हैं, पालते भी है और विदा भी करते हैं। कालिदास के इन छंदों को श्रेष्ठ मानने के बावजूद बेटी के बारे में कविता लिखने का प्रचलन नहीं हो सका। शायद यह कठिन विषय है। कालिदास के इन ४ छंदों में एक संकेत यह भी है कि बेटी की चिंता करने के लिए बेटी का बाप होना जरूरी नहीं है। और भले ही रसराज के रूप में श्रृंगार रस की प्रतिष्ठा है, मगर संस्कृत साहित्य के श्रेष्ठ काव्य का दर्जा ऐसे छंदों को भी मिल सकता है जिनमें श्रृंगार रस नहीं है बल्कि वात्सल्य रस है। कालिदास के विस्तुत साहित्य में बेटी केंद्रित इन चार छंदों की प्रतिष्ठा संस्कृत आलोचना में कहावत की तरह यूं ही नहीं बन गई है। बेटी केंद्रित निराला की

‘सरोज स्मृति’ कविता को जो दुर्लभ प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है, उससे हम सब जानते हैं।

कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव की बेटियों से संबंधित कविताएं हिन्दी साहित्य के एक बड़े अभाव को दूर करती है। उन्होंने कोई योजना बनाकर बेटी केंद्रित कविताएं नहीं लिखि हैं। बल्कि उनके द्वारा लिखी गई कविताओं में यह भाव बोध पारिवारिक एवं सामाजिक संवेदना के साथ घुल-मिलकर व्यक्त हुआ है। उनकी ऐसी कई कविताएं हैं जिनका संदर्भ स्त्री है, मगर उस स्त्री का बुनियादी रूप उस कविता में बेटी का है। ‘सोनचिरई’ उनकी ऐसी ही कविता है, जिसका संदर्भ स्त्री है मगर बुनियाद में बेटी है। ‘सोनचिरई’ 1995 में लिखी गई कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव की पहली कविता है, जिसमें बेटी और स्त्री की चिंता का घुला-मिला रूप है। ‘पत्नि’ के ‘बांझ’ होने के कलंक ने उसे मायके में टिकने न दिया। भावपूर्ण भाषा में कथात्मक तरीके से लिखी गई यह कविता मूलतः बेटी की चिंता की कविता है। इस कविता पर ध्यान दिया जाए कि जिस मां ने उसे जन्म दिया था उसने भी ‘बांझ’ मानकर सोनचिरई को जगह नहीं दी। आख्यानों के अनुसार सबकी मां धरती है। जिस ने सीता को आश्रय दिया था, बेटी मानकर। वह धरती मां भी सोनचिरई से कहती है कि मैंने यदि तुम्हें जगह दी तो जैसी तुम ‘बांझ’ हो वैसे ही मैं बंजर हो जाऊंगी। यह कविता स्त्री की उपेक्षा का समाधान तो अंत में निकाल देती है। सोनचिरई से एक युवक विवाह कर लेता है और पूरी उम्र जीकर जब वह मरती है तब आसुओं से जार-जार उसके आठ बेटे उसकी अर्थी को कंधा देते हैं। मगर, यह कविता एक संकेत यह भी छोड़ती है कि बेटी की समस्या का समाधान तो हुआ नहीं! क्या सोनचिरई पति और पुत्रों को पाने के बाद भूल गई होगी कि उसकी मां और धरती मां ने उसके साथ क्या बर्ताव किया था!

1996 की कविता है ‘पिता होना’। इसमें ‘बेटी’ का जिक्र नहीं है, किंतु पिता बनने की अनुभूति तथा जिम्मेदारी को बहुत बारीकी से विचित्र किया गया है। बारीकी का एक चित्र देखिए कि पिता बनने के बाद क्या होता है-

“बदल जाता है चंचलता का चित्र

कुछ भी नहीं रहता जीवन में ठीक-ठीक पहले की तरह

सिवाय अपनी आंखों में बस गई अपने पिता की

दो चमकती आंखों के

जिसमें सपने अपने लिए नहीं

बच्चों के लिए आते हैं"[1]

पिता बनने के बाद लगता है कि हमारी आंखों में हमारे पिता की चमकती आंखें बस गई है। कवि ने पिता बनने की अनुभूति को अगली तथा पिछली दोनों पीढ़ियों के साथ जोड़कर पारिवारिकता और मनुष्यता का भावपूर्ण चित्र खींचा है। कवि जितेन्द्र की यह कविता बेटी पर लिखी गई कविता भले ना हो, मगर पिता बनने की जो अनुभूति उन्हें बेटियों ने दी है। संभवत: उसकी पृष्ठभूमि इस कविता में मौजूद है। बेटी इस कविता की आंतरिकता एवं अन्तरात्मा में शामिल है।

कवि जितेन्द्र अपनी दूसरी कविता में भी अपने आगे की तथा पीछे की पीढ़ि को एक साथ याद करते हैं। उनकी स्मृति में पिता है और प्रत्यक्ष में बेटी है। यहां इन दोनों का ऐसा समांतर प्रवाह है कि इन कविताओं में परिवार की संवेदना अपने भरे पूरे रूप में बस गई है। 2003 में लिखी कविता है ‘और उधर’। इनमें 3 साल की बेटी गन्ने का रस चूस रही है और कवि याद कर रहे है उन किसानों को, जो गन्ने उपजाते है। इसी क्रम में उन्हें याद आते हैं अपने किसान पिता और फिर किसानों की दुर्दशा के लिए जिम्मेदार देश के शासक-

“इस समय मेरी बेटी चूस रही है गुल्ले

खिलखिला रही है धूप की तरह

मैं एक खेतिहर का बेटा सोच रहा हूं

और उधर ना जाने कौन से फैसले ले रहे होगें

देश चलाने वाले”[2]

बेटियों पर लिखी गई ये कविताएं केवल भावुकता से भरपूर नहीं है, बल्कि इसमें परिवार, समाज और देश भी शामिल है। ‘जैसे मुझे ही पुकार रहे हैं पिता’ 2015 की कविताएं है, जिसमें आगे और पीछे की दोनों पीढ़ियों का मार्मिक स्पर्श मौजूद है-

“अब मैं पुकारता हूं अपनी बेटियों को

तो जाने क्यों लगता है

जैसे मुझे ही पुकार रहे हैं पिता

मेरी आवाज में समाकर”[3]

1996 से लेकर 2018 तक इन कविताओं में कवि के भावक्रम को निरंतर एक रूप में रेखांकित किया जा सकता है।

कवि जितेन्द्र की कुछ कविताएं सीधे ही बेटियों को विषय बनाकर लिखी गई है, जैसे -पहली बार, बेटियां, मैं चिड़िया हूं पापा, लड़कियां, सोनचिरई, पुकार, जीवन के वसंत की धूप, ओ मेरी बेटियों याद रखना, नया विहान आदि। इन सभी कविताओं में बेटियां पिता के जीवन में एक उम्मीद बनकर आई है। बेटी का बाप होना अब तक निराशा तथा जिम्मेदारी का प्रतीक बना हुआ था, किन्तु कवि जितेन्द्र की इन कविताओं में ना कहीं निराशा है और ना ही बोझिल कर देने वाली जिम्मेदारी का बयान। इस तरह के भाव के विरुद्ध वे लिखते हैं-

“पर बेटियां नरम धूप की तरह

बनी रहती है सदा

पिता के संसार में"[4]

कवि जितेन्द्र बेटियों को जीवन में हंसने की सलाह देते हैं और उनमें आत्मविश्वास भरते हैं। उनकी हंसी और खुशी में अपने जीवन के विश्वास की तलाश करते हैं-

"यदि घेरने लगे उदासी चारों ओर से

तभी भी कोशिश करना हंसते रहने की

तुम लोगों के खिल-खिलाने में बचा रहेगा जीवन

बचा रहेगा मेरा विश्वास"[5]

हिंदी कविता के इतिहास में अब तक ऐसी कविताएं जरूर मिलती है, जिनमें मां अपने बच्चे को सुबह-सुबह जगा रही होती है। जगाने वाली मां तथा जिस बच्चे को जगाया जा रहा है वह सामान्य रूप से बेटा होता है 'उठो लाल अब आंखें खोलो' आदि। कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव की कविता है 'नया विहान' (2008)। इस कविता में वे बेटियों को जगा रहे हैं उन के उज्जवल भविष्य के लिए-

"उठो

जागो

ओ मेरी बेटियों

देखो

पौ फट चुकी है

सवेरा होने को है"[6]

इधर के पारिवारिक वातावरण में यह एक सामान्य घटना हो गई है कि पिता अपनी बेटी को सुबह-सुबह जगाए! मगर ऐसी कविता शायद ही अब तक लिखी गई होगी। बात केवल सुबह जगाने तक सीमित नहीं है। यह कविता छायावाद के जागरण गीत की तरह तो नहीं कही जा सकती, मगर बेटी के उज्जवल भविष्य की कामना करती एक जिम्मेदार पिता की वाणी में प्रकृति के रूपको के प्रयोगों का सहारा लिया गया है। इसमें सूरज खेत जोतने जा रहा है और चांद फसलों को रात भर अंगोरकर अपने घर चला गया है। कवि बेटियों को सूरज तथा चांद की तरह जिम्मेदार बनाना चाहते है। वह चाहते है कि 'नया विहान' आए और बेटियां इस नए युग में पूरी ताकत के साथ खड़ी हो सके।

इन के 'बेटियां' संकलन में कुछ ऐसी कविताएं भी है, जिनमें बेटियों का जिक्र है। जैसे- वैशाख:तीन, दिल्ली में बेना, घर की उदासी, छुई-मुई नन्हीं लाजवंती, उम्मीद भर, कला, दिल्ली में एक दिन भर जाना भीतर तक, जीवन राग, लड़कियां। इन कविताओं से गुजरते हुए आपको महसूस होगा कि जीवन के विभिन्न प्रसंगों में बेटियों की जो सहज उपस्थिति हुआ करती है उसे कविताओं में जगह देना एक तरह की नई काव्य कुशलता है। परिवार में बेटियां पहले भी महत्वपूर्ण रही है। उन्होंने परिवार को संभालने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। माता-पिता, भाई-बहन, दादा-दादी आदि की हंसी खुशी तथा सेवा में उनकी भूमिका पहले भी महत्वपूर्ण रही है, मगर उनकी सहज पारिवारिक उपस्थिति को कविताओं में प्रायः जगह नहीं दी जाती। कवि जितेन्द्र ने स्त्री के बेटी पक्ष को अपनी कविताओं में शामिल करके कविताओं को गौरवाविन्त किया है।

'वैशाख: तीन' में डेढ़ साल की बेटी चिड़ियों के चहचहाने से उल्लास से भर उठती है और मानो पिता को भी यह दृश्य अच्छा लगता है, क्योंकि इस हर्षित अनुगूंज में उनकी बेटी की आवाज भी शामिल है। 'दिल्ली में बेना' वस्तुत: गृहस्थ जीवन की कविता है। विकसित तथा आरामदायक होती जाती गृहस्थी में पुरानी चीजों का छूटता जाना एक आम बात होती है। कवि ने हाथ से चलाए जाने वाले बांस

की खप्पचियो से बने 'बेना' का जिक्र इस कविता में करके उस स्मृति को रेखांकित किया है। मगर संवेदना के तार को झंकृत किए जाने का आधार बनती है उनकी छोटी बेटी, जो बिजली न होने के कारण रात भर 'न सोई न जाग पाई'। यह कविता 2004 में देश की राजधानी दिल्ली की एक रात की चर्चा करती है। गर्मी की उस रात में रात भर नहीं आई बिजली। मगर इस कविता में संवेदना को आधार देती है बेटियां।

'दिल्ली में एक दिन भर जाना भीतर तक' शीर्षक कविता में कवि जितेन्द्र अपने गांव के वृद्धि चंद गुप्ता और उनके छोटे भाई विश्वंभर से दिल्ली के अपने घर में मिलकर बचपन की अनेक बातों को याद करते है। यह कविता भारत के बदलते गांव को रेखांकित करती है। गांव में हुए भौतिक विकास तथा बदले हुए सामाजिक वातावरण की चर्चा करती यह कविता गांव की पारिवारिक संस्कृति के बारे में बताती है। इनमें हो रहे परिवर्तनों को व्यक्त करना इस कविता का मानो लक्ष्य है। मगर कविता के अंत तक जाते-जाते इन सब बातों को चुपचाप सुनती हुई बेटियों का जिक्र आता है-

"सुनकर मुस्कुराई मेरी बेटियां
मैं भी मुस्कुरा भीतर ही भीतर"[7]

पूरी कविता बेटियों की मुस्कुराहट से मानों भर जाती है। इस कविता का विषय ना होते हुए भी, वे विषय को प्रभावित करने वाला एक पक्ष बन जाती है। कवि जितेन्द्र अपनी अनुभूतियों को बेटी के जरिए जब व्यक्त करते हैं।तब भी अनुभूतियां सशक्तरूप में मालूम पड़ने लगती है।

कवि जितेन्द्र का काव्यसंग्रह 'बिल्कुल तुम्हारी तरह' की सभी कविताएं पत्नी केंद्रित है। केदारनाथ अग्रवाल हिंदी कविता के इतिहास में पत्नी केंद्रित कविताओं (संग्रह- है मेरी तुम) के सबसे बड़े कवि माने गए हैं। उनके बात किसी दूसरे हिंदी कवि का ऐसा संग्रह नहीं मिलता। जितेन्द्र जी का उपर्युक्त संग्रह केदारनाथ

अग्रवाल की इस परंपरा का सुंदर विकास करता है। 'बिल्कुल तुम्हारी तरह' के साथ यदि 'बेटियां' नामक संकलन को शामिल करके विचार किया जाए तो संभवत: कवि जितेन्द्र को पारिवारिक जीवन के एक बड़े कवि के रूप में उपस्थित होते हैं।

कवि जितेन्द्र जब पत्नी और बेटी को एक ही कविता में समेटते हैं, तब उस कविता का भावोत्कर्ष पारिवारिक संवेदना की दृष्टि से बहुत ऊंचा हो जाता है। प्रेम के अनेक रूप होते हैं, उनमें से कई को एक साथ ऐसी कविताओं में महसूस किया जा सकता है। उनकी एक कविता है- 'जितनी हंसी तुम्हारे होठों पर' यह कविता केवल पत्नी केंद्रित कविता नहीं है। इसमें बेटियां भी है, मां भी है तथा पिता भी। कहां जा सकता है कि यह कविता गृहस्थी की बहुआयामी संवेदनाओ को पूरी मासूमियत के साथ संभाले हुए हैं। इन बिंदुओं पर पहुंचकर यह कविता अतुलनीय मालूम पड़ने लगती है। पीछे की तरफ मुड़कर तलाशने पर भी ऐसे सुंदर सहयोगो की कविता याद नहीं आती है। कुछ इसी तरह की कविताएं है- 'मेरी प्रतीक्षा से लंबी एक प्रतीक्षा' और 'घर की उदासी'।

'पुकार' कवि जितेन्द्र की बहुचर्चित कविता है। एक लड़की शुभांगी की अभागी जिंदगी से शुरू हुई यह कविता पिताओं को संबोधित करती हुई पूर्ण होती है। कवि की अपील है कि हे पिताओं! बेटियों को 'मत छोड़ो विधना की मर्जी पर'। यह कविता बेटियों की दुर्दशा पर प्रत्यक्ष भाषा में विचार करती है। बेटियों के प्रति बरती जाने वाली लापरवाहीयों के विरुद्ध पिताओ को आगाह करती है यह कविता। यह कविता स्त्री के वैवाहिक जीवन की दुर्दशाओं के लिए भाग्य के बदले पिताओ को जिम्मेदार मानती है। जितेन्द्र अपनी कविताओं के मूल विषय को अमूर्तता से बचाने में प्राय:सफल होते हैं। वे समस्याओं का काव्यात्मक समाधान देने की प्रवृत्ति नहीं रखते हैं। कविता रचते हुए वे सावधान रहते हैं कि ठोस समस्याओं का समाधान सांसारिक औजारों के सहारे ही निकाला जा सकता है।

2014 में लिखी गई कविता 'संजना तिवारी' की विशेषता है कि अपने समय की लुप्त होती एक गंभीर प्रवृत्ति को इसमें में रेखांकित किया गया है। यह प्रवृत्ति है पढ़ने-लिखने तथा जानने की प्रवृत्ति। संजना तिवारी केवल किताबें और पत्रिकाएं नहीं बेचती है-

"वे किसी भी साहित्यिक से अधिक जानती है

साहित्यिक पत्रिकाओं के बारे में"[8]

इस कविता के अंत में कवि की अपील है कि आप जब भी जाए मंडी हाउस श्रीराम सेंटर के सामने, पेड़ के नीचे फैली हुई संजना तिवारी की दुकान से कम से कम एक किताब या फिर पत्रिका जरूर खरीदना।

"और यकीन रखिए आपका यह उपहार

किसी और पर फर्क डाले या ना डालें

दाल में नमक जीतना ही सही

जरूर डालेगा अगली पीढ़ी पर"[9]

आज हमारे समाज में ऐसे अनेक पिता है जिनकी अगली पीढ़ी में केवल बेटी या फिर बेटियां है। और इन पिता में से अनेक ऐसे पिता है, जिन्हें अपनी बेटियों पर गर्व है। यह कहना जरूरी है कि इन गौरवान्वित पिताओ को 'बेटे का बाप' ना हो पाने का कोई अफसोस नहीं है। कवि जितेन्द्र ऐसे तमाम पिताओं को मानो संबोधित कर रहे हैं कि संजना तिवारी की किताब आपकी अगली पीढ़ी (बेटियों अथवा बेटो अथवा दोनों से बनी) पर कुछ ना कुछ असर जरूर डालेगी।

बेटियों से संबंधित जितेन्द्र श्रीवास्तव की कविताओं की सूची काव्य संग्रह 'बेटियां' के अनुसार इस प्रकार है-

काव्य संग्रह: असुंदर-सुंदर (2008)

शीर्षक	**वर्ष**
मैं एक चिड़िया हूं पापा	2005
घर की उदासी	2005
जितनी हंसी तुम्हारे होठों पर	2006
जीवन के वसंत की धूप	2005
ओ मेरी बेटियों याद रखना	2005
मेरी प्रतिज्ञा से लंबी एक प्रतिज्ञा	2003
छुईमुई नन्हीं लाजवंती	2005
उम्मीदभर	2006
दिल्ली में बेना	2004
बेटियां	2004

काव्य संग्रह: कायांतरण(2012)

पुकार	2008
नयाविहान	2008
कला	2009

काव्य संग्रह : इन दिनों हालचाल (2000/2011)

सोनचिरई	1995

काव्य संग्रह: अनभै कथा(2003/2005)

पिता होना	1996
पहलीबार	2000
वैशाख-तीन	2003

काव्य संग्रह :सूरज को अंगूठा

दिल्ली में एक दिन भर जाना भीतर तक	2013
संजना तिवारी	2014
जीवनराग	2016
जैसे मुझे ही पुकार रहे पिता	2015

असंकलित :अप्रकाशित कविताएं-

घर का राग घर का मौसम	2018
और उधर।	2003

(कुल 23 कविताएं)

कवि जितेन्द्र की इन कविताओं में से ज्यादातर प्रकाशित है, इसीलिए इन के गुण तथा दोषों से पाठक परिचित ही होगे। इन कविताओं को एक साथ पढ़कर एक नया प्रभाव ग्रहण किया जा सकता है। इन कविताओं के समवेत स्वर से यह महसूस किया जा सकता है कि हिंदी कविताएं बेटियों के प्रति कितनी संवेदनशील है।

स्त्री विमर्श के कई पक्ष है। जिनमें से एक पक्ष बेटियों का भी है। इस पर साहित्य की दुनिया में चर्चा कम होती है। यह कहा जा सकता है कि बेटी का पक्ष, स्त्री का ही पक्ष है, इसीलिए स्त्री की चिंता में ही बेटी की चिंता को भी शामिल मान लेना चाहिए। मगर एक बात का ध्यान रखना चाहिए कि स्त्री की तुलना में बेटी के प्रति संवेदनात्मक गहराई थोड़ी ज्यादा होती है। स्त्री की चिंता करनेवाली भाषा में बेटी की चिंता करती हुई कविता ज्यादा मर्मस्पर्शी होती है। कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव की बेटी केंद्रित कविताएं संभव है कि हिंदी कविता में स्त्री विमर्श के एक नए पक्ष को विस्तारीत करेगा।

ये कविताएं स्त्री विमर्श के लिए एक नए द्वार का उद्घाटन भी करती है। बेटी के लिए रची गई काव्य भाषा में संवेदना का एक नया तथा गहरारूप हमारे सामने आता है। स्त्री विमर्श की भाषा के विभिन्न रूपों में जेंडर आधारित बहसो को प्रधानता मिलती रही है। मगर बेटी केंद्रित इन कविताओं में स्त्री के प्रति आत्मीय और निशछल भाषा का जो प्रयोग हुआ है। उसकी बुनियाद मनुष्यता की जमीन पर तैयार की गई है। यदि हिंदी कविता में बेटी को विषय के रूप में सच्चे मन से अपनाया जाए तो पूरी संभावना है कि स्त्री विमर्श की सर्वाधिक आत्मीय और मानवीय भाषा हमारे सामने होगी। इस भाषा को पुरुष भी रच पाएगा और स्त्री भी। इस बात की आश्वस्ति लगती है कि पुरुषों के द्वारा रची गई इस भाषा में स्त्री के प्रति कुंठाओ के लिए कोई जगह नहीं होगी। आशा की जा सकती है कि कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव की ऐसी कविताएं लंबे समय तक अच्छी कविताओं के रूप में याद की जाती रहेगी जैसे निराला और अनामिका की बेटी केंद्रीय कविताएं याद की जाती है।

‘सोनचिरई’ जितेन्द्र की बहुत चर्चित तथा बहुत पठित कविताओ में से एक है। इस कविता का रचनाकाल १९९६ है, लेकिन पहली बार यहा १९९८-९९ में ‘पहल-59’ में प्रकाशित हुई थी। यह कविता भोजपुरी जनपद की एक लोककथा को आधार बनाकर लिखी गई है। जिसे हम लोकगीत भी कह सकते हैं। यह लोकगीत

बच्चों के जन्म के अवसर पर स्त्रियों द्वारा गाया जाता है। इस गीत को लोक में सोहर भी कहा गया है। 'सोनचिरई' की शुरुआत लोककथा की तरह होती है। कविता की पहली पंकित है-

'बहुत पुरानी कथा है

एक भरे पूरे घर में

एक लड़की थी 'सोनचिरई'[10]

बचपन में दादा-दादी, नाना-नानी द्वारा सुनाई गई कथाओं की शुरुआत भी कुछ इसी तरह होती थी- 'बहुत पहले की बात है/एक गांव में/एक बनिया रहता था'। कहने का अर्थ यह है कि कवि जितेन्द्र के हाथों में आकर भी लोककथा का मूल स्वर तथा मूल भाव नहीं बदलता। कवि जितेन्द्र की एक बड़ी विशेषता यह भी है कि महानगर में रहने के बाद भी उनसे उनकी संस्कृति नहीं विसरती। वास्तव में यह वह जगह है, जहां से खड़े होकर कवि जितेन्द्र चीजों को देखते हैं। कभी-कभी यह समझना बहुत कठिन हो जाता है कि लोक कवि के भीतर गहरे रूप में मौजूद है या कवि लोक के भीतर। अपने लोगों से हाथ मिलाने की जगह 'धधाकर' मिलते हैं और समाचार की जगह हालचाल पूछते हैं। जितेन्द्र को पढ़ना अपने लोक से गुजरना और मिलना है।

भारतीय समाज और साहित्य में ना तो स्त्री का दुख नया है और ना ही उसकी अभिव्यक्ति। आज से कई 100 वर्ष पहले लोकगीतों के माध्यम से स्त्रियों की पीड़ा और उसके बांझपन के दर्द को अभिव्यक्त किया गया है। जरूरत है ऐसी लोककथा और लोकगीतों की खोज करने की।

एक स्त्री सारे दर्द और पीड़ा को बर्दाश्त कर सकती हैं, सिवाय बांझपन के। घर-परिवार और लोगों की चुभती बातें और उनका निष्ठुर तथा निर्दयी व्यवहार उसे अंदर से तोड़ देता है। घर-परिवार के निष्ठुर व्यवहार और स्त्री के अपार दुख को

लोकगीतो में बहुत ही बारीकी से दिखाया गया है। स्त्री की पीड़ा को व्यक्त करने के लिए आज जिस भाषा का प्रयोग किया जा रहा है उस से कितनी अलग स्वस्थ और साफ-सुथरी भाषा है इस कविता की। सच्चाई यह है कि स्वाभाविक और सरल भाषा में ही ऊंची तथा सच्ची अभिव्यक्ति हो सकती हैं। कृत्रिम भाषा में कृत्रिम भाव ही व्यक्त होगें।

इस सोहर में तथा कवि जितेन्द्र की कविता 'सोनचिरई' में स्त्री की व्यथा फूट पड़ी है। पति के घर से निकालने के बाद वह जंगल-जंगल में भटकती है। वह इस दुख से ऊभर ने के लिए जीना नहीं बल्कि मरना चाहती है। पर समस्या यह है कि उसे मौत भी नसीब नहीं होती। बागीन, नागिन तथा धरती उसे खाने, डसने और अपनाने से अस्वीकार कर देती है।

'सोनचिरई' का जन्म तथा विवाह एक अच्छे खाते-पीते परिवार में हुआ था। पर विपत्ति में उसे ना तो ससुराल वालों ने अपनाया और ना ही नैहरवालों ने। यहां तक कि उसकी अपनी मां भी उसकी 'चिरौरी' को अस्वीकार कर देती है। मां कहती है-

"और सुनो बुरा ना मानना बेटी

जो तुम्हारी परछाई पड़ेगी

तो मेरी बहू बांझ हो जाएगी"[11]

इस पंक्ति से यह बात भी ध्वनित होती है कि स्त्री का अपना कोई घर और कोई ठिकाना नहीं होता। जहां वह विपत्ति में सुकून से रह सके। उसे नैहर या फिर ससुराल के ऊपर ही निर्भर रहना पड़ता है और जब वे भी अपनाने से इंकार कर दे तब? तब तो उसके पास एक ही रास्ता बचता है मौत का। इस कठोर तथा निष्ठुर समाज में एक बांझ स्त्री के लिए थोड़ी-सी भी संवेदना और जगह नहीं थी।

'सोनचिरई' कविता धरती से निवेदन तक लोकगीत पर आधारित है। उसके बाद का अंश कवि की अपने विचार है। पर कहीं से भी यह प्रसंग अतिरिक्त नहीं लगता। रस में कहीं भी बाधा उपस्थित नहीं होती, किन्तु लगता है इस अधूरी रचना को या फिर यूं कहें एक अधूरी स्त्री को जितेन्द्र श्रीवास्तव पूर्ण बनाते हैं। सोहर सुनने के बाद किसी के भी मन में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि उसके बाद क्या हुआ? वह कहां गई? आदि तमाम तरह की जिज्ञाशाएं हो सकती है और होनी भी चाहिए। एक संवेदनशील मनुष्य के मन में ऐसे प्रश्न उठना स्वाभाविक है। सोहर सुनने के बाद शायद कवि के मन में भी यह प्रश्न उठा होगा। और उसके उत्तर की खोज में वह भी राह-राह भटका होगा। अंत में वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि-

स्त्रियां कभी बांझ नहीं होती

वे रचती है।

वे रचती है तभी हम-आप सोते हैं

तभी यह दुनिया होती है

रचने का साहस पुरुष में नहीं होता

वे होती है तभी पुरुष

पुरुष होते हैं।[12]

और रचने की क्षमता सोनचिरई में थी। तभी तो जब वह मरी-

"आंसुओं से जार-जार उसके आठ बेटों ने

उसकी अर्थी को कंधा दिया।"[13]

रचने का साहस राजकुमार में नहीं था। कवि जितेन्द्र इस प्रसंग के माध्यम से यह बताते हैं कि 'सोनचिरई' नहीं परन्तु वह राजकुमार बंजर था। उसके अंदर यह शक्ति ही नहीं थी कि वह नए बीज को विकसित कर सके।

हम सब इस बात को जानते हैं कि कवि जितेन्द्र उम्मीद के कवि है। लोकगीत का अंत नाउम्मीद में होता है, जबकि कविता का अंत उम्मीद से होता है। कविता में दो बातें विशेष ध्यान देने योग्य है। पहली बात, दुनिया के सभी पुरुष निर्दयी या फिर निष्ठुर नहीं होते। यह सच है कि 'सोनचिरई' को घर छोड़ने के लिए उसके पति ने ही कहा था, किन्तु साथ ही यह भी सच है कि हर तरफ से निराश सोनचिरई को एक पुरुष ने ही सहारा दिया था। पहला कटु वचनों के साथ घर छोड़ने को कहता है, तो दूसरा निहोरा करते हुए साथ चलने का आग्रह करता है। सजीला युवक सारी सच्चाई जानने के बाद उसे अपने साथ चलने को कहता है। यह सच्चा प्रेम है। सोनचिरई हर रूप तथा हर परिस्थिति में उसे स्वीकार है। सजीले युवक को उसके सुंदर देह से नहीं किन्तु उस से प्रेम है।

दूसरी बात यह की सोनचिरई बांझ नहीं थीं। इस बात को साबित करने के लिए कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव लोकगीत को एक नया मोड़ देते हैं। कवि जितेन्द्र सिर्फ कविता लिखने के लिए कविता नहीं लिखते, परन्तु वे कविता के साथ-साथ समाज में भी परिवर्तन देखना चाहते हैं। इस कविता में बांझ स्त्री की सच्ची वेदना और सच्चा प्रेम व्यक्त हुआ है।

हम देखते हैं कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव बहुत ही सूझ-बूझ से शब्दों का प्रयोग करते हैं। वे एक-एक शब्द के प्रति सचेत और सतर्क है।

"पा और पा

मिलते हैं दो वर्ण

फिर चुपके से जन्म लेता है

एक शब्द

पा पा पापा

पापा पापा

तुतलाती आवाज में

जब पहली बार पुकारता है कोई

चांदनी उतर आती है

मन की मुंडेर पर "[14]

कवि जितेन्द्र के यहां पापा यानी पिता की गहरी उपस्थिति है। एक तो जितेन्द्र खुद पिता है और दूसरे उनके पिता। हमारे यहां अक्सर कहा जाता है कि शादी के बाद आदमी संभल जाता है और पिता बनने के बाद वह जिम्मेदार हो जाता है और जिम्मेदार इस कदर की उसके अंदर से 'स्व' का लोप हो जाता है। उसका सारा सुख और दुख बच्चों की इर्द-गिर्द ही घूमता रहता है। उसकी दुनिया उसके बच्चे ही हो जाते हैं। ऐसे पिता बच्चों की नींद सोते हैं और उसी नींद जागते भी है। पिता अपने बच्चों की इच्छाओं के लिए अपने सारे सपनों को 'दूर कहीं बहुत दूर फेंक देते हैं'। जहां से वे लौट कर ना आ सके। उनकी आंखों में सपने अपने लिए नहीं, किन्तु अपने बच्चों के लिए आते हैं। ठीक वैसे ही जैसे उनके पिता की आंखों में उनके लिए सपने चमकते थे। यानी पिता होने के बाद-

"कुछ भी नहीं रहता जीवन में ठीक- ठीक पहले की तरह"[15]

सब कुछ बदल जाता है। हमारी दुनिया, हमारी इच्छाए, हमारे सपने, सब कुछ। कवि कहते है-

"बहुत सुखद होता है पिता हो जाना

इस संशय का मर जाना

कि जिंदगी बंजर भी हो सकती है"[16]

अब तक हम यह सुनते आ रहे थे कि स्त्रियां बांझ होती है परन्तु कवि के यहां स्त्रियां बांझ नहीं है। पर इस मान्यता के विपरीत कवि एक नई सच की स्थापना करता है कि 'बंजर ना होना पिता होना है।' नयी फसल और नई नस्ल ना देने वाली चीजें बंजर ही होती है। इसीलिए कवि कहते है कि-

"पिता होना सिर्फ बच्चे पैदा करना नहीं होता

जिम्मेदारियों में स्वयं को मिटाना होता है

स्वयं को मिटाना

अपने सपनों में खुद अनुपस्थित हो जाना

छोड़ देना उसमें बच्चों को

निश्छल किलकारियां भरने के लिए

पिता होना है/पिता होना ब्रह्मा होना है"[17]

एक 'पापा' शब्द पुरुष को 'ब्रह्मा' के समकक्ष लाकर खड़ा कर देता है। पिता हुए कवि को उनके पिता अक्सर याद आते हैं। कवि के पिता उनकी स्मृतियों में अपने अनुभवो का खजाना लेकर आते हैं। वे अक्सर समय की कहानियां सुनाते हैं। उनका यह कहना गलत नहीं था कि

“समय का घोड़ा

अगली सदी के खलिहान की ओर जा रहा है।”[18]

हम में से किसी ने इस बात की कल्पना न की थी कि “आम के पेड़ों पर लटक जाएंगे गिद्ध/राहों में घर बनाएंगे सांप/पहाड़ों से उतरेगी सांवली रोशनी/नदी की धार पतली हो जाएगी।”[19] लेकिन यह सब हुआ और यह सब हमारे पूर्वजों के संघर्ष के खिलाफ हुआ। लेकिन इतना होने के बाद भी पिता का कहना है कि- “फिर भी हमें नहीं भूलना चाहिए/कि हम गुलामी के खिलाफ उबले/उस खून की विरासत है/जिसमें हम गलत वक्त में पैदा हुए/यह कहने से बेहतर होता है/अपनी पैदाइश को सही साबित करना"[20]

‘अपनी पैदाइश को सही साबित करना’ पिता का यह कहना अद्‌भुत है, इसके लिए कोई शब्द नहीं मिल रहा। ‘न डरना, न हारना और लड़ना समय से’ अपनी पैदाइश को सही साबित करना है। इसलिए कवि अपने पिता को बार-बार धन्यवाद देता है। यह जानते हुए भी कि पिता-पुत्र के बीच धन्यवाद जैसा कोई शब्द नहीं होता।

कवि जितेन्द्र अपने पिता को इसीलिए धन्यवाद देते है कि उन्होंने चलना सिखाया, सिर्फ अक्षरों और शब्दों को ही नहीं परन्तु चेहरों को भी पढ़ना सिखाया। सिर्फ मेड पर बैठना ही नहीं, खेत में उतरना भी सिखाया। उन्होंने सिर्फ काम करवाना ही नहीं, बल्कि काम करना भी सिखाया। बहुत-बहुत धन्यवाद इसीलिए कि उन्होंने ‘मानुष राग’ सिखाया। रोम- रोम से धन्यवाद इसीलिए कि उन्होंने ऋण से उऋण होना सिखाया। इन कुछ पंक्तियों के माध्यम से हम समझ सकते हैं कि एक पिता का जीवन में क्या महत्व होता है। यदि बच्चों के बिना पिता का जीवन बंजर है तो पिता के बिना भी बच्चों का जीवन दिशाहीन है। एक पिता अपने बच्चों को दुनियादारी की बातें सिखाता है। वह उसे बदलते समय को पहचानने की दृष्टि देता है।

कवि जितेन्द्र खुद एक जिम्मेदार और अच्छे पिता है। कवि की बेटियां उनकी आंखों की पुतलियां है। कवि अपनी बेटियों को संबोधित कर कहते है-

"तुम लोगों के आने के बाद

शायद मनुष्य होने लगा हूं

तुम लोगों की हंसी में हंसने लगा हूं।"[21]

बेटियां इन की प्राणशक्तियां है। इन की हंसी में ही छिपा है जीवन तथा विश्वास। दरअसल "बेटियां होती ही है शहद/जो मिटा देती है/आत्मा की सारी कड़वाहट।"[22] कवि का यह कथन बिल्कुल सत्य है कि- "जितनी हंसी होती है बेटियों के अधर पर/उतनी उजास होती है पिता के जीवन में/जो ना हंसे बेटियां/तो अंधेरे में खो जाते हैं पिता।"[23] बेटियों की वजह से कवि की तकदीर बदल गई है। एक पिता के जीवन में बेटियां धूप की तरह गर्माहट लेकर आती है और उस धूप से, अपने आगमन से, पिता के जीवन को वसंत की तरह सीच देती है। बात वहीं आ गई, एक पिता की पहचान और खुशी उसके बच्चों और उसकी हंसी से है।

एक पिता के रूप में कवि जितेन्द्र बेटियों को आवाज लगाते हुए कहते हैं-

"ओ मेरी बेटियों/रात बीत चुकी है

और नया दिन खड़ा है/तुम्हारी अगवानी में

उठो/जागो इस नए विहान के बीतने से

पहले पहले जागो

ओ मेरी बेटियों जागो"[24]

'नए विहान' की, नए सूरज की तथा नए सवेरे की प्रतिज्ञा हमारे देश भारत की सारी बेटियों को है। वह चाहती है कि अंधकार का यह 'पो फटे', ताकि वे चिड़ियों

की तरह उन्मुक्त रूप से, बिना किसी रोक-टोक के उड़ सके। वे चिड़ियों की तरह अपने मन का गीत गाना चाहती है। अपने मन का घोंसला बनाना चाहती है। अपनी पसंद के घर जाना चाहती है। वे चाहती है कि उनके पिता उन्हें लड़की के रूप में नहीं, एक चिड़िया के रूप में देखें। उनकी बेटी कहती है-

"सोचो तो पापा

मैं तुम्हारी बिटिया

एक चिड़िया हूं

अपने मन की

सोचो तो पापा

सोचो न!"[25]

ध्यान दीजिए, यहां पापा की बिटिया सिर्फ सोचने के लिए कह रही है, मानने की बात तो अभी बहुत ही दूर है। उस बेटी की ही नहीं किन्तु कवि की भी यही इच्छा है कि सारे पिता अपनी बेटी को 'एक चिड़िया' के रूप में देखें। एक ऐसी चिड़िया के रूप में जिसके सपनों पर उसका अपना अधिकार हो।

कवि इस बात को अच्छी तरह जानते है कि बेटियों का जीवन मुश्किलों से भरा पड़ा है। इसीलिए कवि उन्हें हिम्मत देते हुए कहते है-

"ओ मेरी बेटियों याद रखना

यदि जीवन में दुख का आलाप दीर्घ होने लगे

तब भी परछाइयों के पीछे-पीछे मत भागना

डरना नहीं किसी आईने से!

ओ मेरी बेटियों!

मेरी आंखों की पुतलियों!

न डरना न हारना

लड़ना समय से।"[26]

आप देख सकते हैं, कवि जितेन्द्र भ्रम फैलाने वाली है या फिर झूठी उम्मीद वाली रचनाएं नहीं लिखते हैं।

कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव के यहां एक तीसरे पिता भी उपस्थित है। वह पिता कोई भी हो सकता है। इस तीसरे पिता से कवि की यह प्रार्थना है कि वे अपनी बेटियों को ईश्वर की मर्जी, भाग्य के भरोसे ना छोड़े। उन्हें उनके जीवन की हंसी हंसने दे, उड़ने दे उनके हिस्से की उड़ान, ना छोड़े उन्हें विधना की मर्जी पर। हमारी गलती हमारी बच्चियों के जीवन को लहूलुहान कर देती है। वे पिताओं को आवाज देते हुए कहते हैं-

"पिताओं दौड़ो...तेज दौड़ो

और फूलों से भर दो बेटियों का अचरा

देखना कोई गलती न करना

कोई हड़बड़ी भी नहीं

वरना ना जाने किस घाट लगेगी बेटियां"[27]

कवि चलने की नहीं परन्तु तेज दौड़ने की बात कह रहें है। कवि जितेन्द्र के यहां एक उनके पिता है जो उन्हें समझते हैं, राह दिखाते हैं और एक कवि जितेन्द्र है, जो दूसरे पिताओं को समझाते हुए राह दिखाते हैं।

समकालीन कविता के महत्वपूर्ण कवि के रूप में कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव एक महत्वपूर्ण नाम है। पिछले लगभग 3 दर्शकों से लगातार सृजनरत इस कवि के

अब तक प्रकाशित कविता संग्रह है- इन दिनों हाल चाल, अनभै कथा, असुंदर-सुंदर, बिल्कुल तुम्हारी तरह, कायांतरण, सूरज को अंगूठा और कवि ने कहा। अपनी पीढ़ी के अनन्य कवि जितेन्द्र की कविताओं ने पाठकों को बार-बार आकर्षित किया है। कथ्य की सहजता तथा सरलता होने के कारण इनकी कविताएं प्रभावी है। और संप्रेषनीय भी। कम से कम शब्दों में गहरे भावबोध से युक्त कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव की कविताओं से गुजर कर पाठक को नागार्जुन, त्रिलोचन, शमशेर सिंह और केदारनाथ सिंह की कविताओं का भी स्मरण होता है। कहा जा सकता है कि यह कवि उपर्युक्त कवियों परंपराओं को अपने ढंग से विकसित कर रहें है। इनकी कविताओं में समय की धड़कन, जनजीवन के सुख-दुख, संघर्ष, स्मृति, प्रेम, विसंगति, विडंबना, लोक, मानवीय संबंध आदि के सुंदर चित्र अंकित हुए हैं। विस्थापन तथा घर का महत्व, जिजीविषा और शोषण के चक्रव्यूह आदि की काव्यात्मक अभिव्यक्ति कवि की लेखनी से सुंदर ढंग से प्रस्तुत होती है। कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव हिंदी के पहले और अकेले कवि हैं जिन्होंने बेटियों को केंद्र में रखकर 23 कविताएं लिखी है।

भूमंडलीकरण तथा बाजारवाद के दौर में कवि की चिंता बार-बार जाहिर होती दिखाई पड़ती है। यह इसलिए की बाजारवादी समय में कुरूचि और विकृति को अच्छा घोषित कर उन्हें बेचा जा रहा है। बाजार दरअसल क्रेता-विक्रेता का ही स्थान नहीं रह गया है। यह एक अखाड़ा भी है। उसका बुना हुआ और फैलाया हुआ जाल भी है। बहुराष्ट्रीय कंपनियां दैत्य बनी हुई है। इस बाजार में सब कुछ बिकाऊ है। यहां भारतेंदु हरिश्चंद्र के नाटक 'अंधेर नगरी' के बाजार से ही अधिक भयानक है। हमारे समय के बाजार में माननीय नाते-रिश्ते और इंसानियत आदि सब कुछ बेचे और खरीदे जा सकते हैं। सुख-दुख, प्रेम, हिंसा और क्रूरता संवेदना आदि बेचकर बाजार मुनाफे के लिए लगे हुए हैं। इसने हमारा सौंदर्य बोध भी बदल दिया है। मानव जीवन की सहजता तथा स्वाभाविकता को छीन लेने में बाजार सफल रहा है अपने समय की विसंगतियों से कवि का मन आहत है। वह

चाहते है कि मनुष्य जीवन में संवेदना का स्रोता प्रवाहित रहे। बाजारवादी अर्थव्यवस्था की आसुरी शक्तियां पराजित हो जाए। नाते-रिश्ते बने रहे। संबंधों की ऊष्मा जीवित रहे। कवि जितेन्द्र रिश्तों के कवि है। संबंध को सर्वाधिक महत्व देते हैं। अपने जीवन में भी तथा सृजन संसार में भी। इस दृष्टि से बेटियों का महत्व स्वयंसिद्ध है।

कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव की हिंदी साहित्य में उल्लेखनीय कविता 'सोनचिरई' में बेटी से बहू बनकर घनघोर निष्कासित सोनचिरई के कष्ट को हृदयद्रावक शैली में प्रस्तुत किया गया है। पति, ननंद और सास की प्रताड़ना समझ में आती है। किन्तु चारों ओर से ठुकराई गई सोनचिरई मैके आती है तो उसकी परछाई से भी परहेज किया जाता है। सोनचिरई के माध्यम से एक ओर समाज में प्रचलित जर्जर सोच और परंपरा का उद्घाटन होता है तो दूसरी ओर बेटी की असह्य वेदना की अभिव्यक्ति हुई है। कवि के शब्दों में-

"और सुनो बुरा ना मानना बेटी

जो तुम्हारी परछाई पड़ेगी

तो मेरी बहू बांझ हो जाएगी

यह कह कर माँ ने अपना दरवाजा बंद कर लिया

अब सोनचिरई क्या करती!"[28]

सोनचिरई की विवशता, लाचारी को अंकित करना कवि का उद्देश्य नहीं है। उसकी सीमाओं को शक्ति तथा सामर्थ्य में कायांतरित करना समर्थ कवि कर्म है। कवि जितेन्द्र भी ऐसा करते हुए अपनी कवि दृष्टि से परिचित कराते हैं-

"वह स्त्री थी

और स्त्रियां कभी बांझ नहीं होती

वे रचती है

वे रचती है तभी हम आप होते हैं

तभी दुनिया होती है

रचने का साहस पुरुष में नहीं होता

वे होती है तभी पुरुष

पुरुष होते हैं।"[29]

आज से 23 वर्ष पूर्व लिखी गई कवि की एक बेहतरीन कविता है 'पिता होना'। पिता होना एक एहसास है। एक सुखद अनुभूति है। परंतु इसे प्राप्त करने के लिए 'स्व' को तिरोहित करना पड़ता है। जिम्मेदार बनकर बेटी के सपनों को अपने सपनों के रूप में सजाए रखना पड़ता है। यह कविता इस अर्थ में अनुपम है कि बच्चों को बड़ा करने में मां का त्याग बार-बार चित्रित हुआ है किन्तु, यहां बेटी के प्रति पिता के अंत:स्थल में उफनते संवेदना के ज्वार को बड़ी शिद्दत के साथ अंकित किया गया है। संवेदनाओं के अभाव में पितृत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती। इस कविता में दो पिता है। एक स्वयं कवि और दुसरे कवि के पिता। कवि कविता पद वाच्य होता है तो पीढ़ी दर पीढ़ी से चली आ रही सुखद मान्यताओं को सही अर्थों में हृदय बोध कर पाता है। कायांतरण हो जाता है-

"कुछ भी नहीं रहता जीवन में ठीक ठीक पहले की तरह

सिवाय अपनी आंखों में बस गई अपने पिता की

दो चमकती आंखों के

जिनमें सपने अपने लिए नहीं

बच्चों के लिए आते हैं"[30]

बेटियां कवि के हृदय की स्पंदन और जीवद्रव्य है। इसीलिए वह पिता बनने की मूल शर्त मानते हैं-

"स्वयं को मिटाना

अपने सपनों में खुद अनुपस्थित हो जाना

छोड़ देना उसमें बच्चों को

निश्छल किलकारियां भरने के लिए

पिता होना है"[31]

ज्ञानरंजन जी की 'पिता' कहानी के पिता से भिन्न कवि जितेन्द्र की 'पिता होना' शीर्षक कविता कितनी हृदयस्पर्शी है उतनी ही प्रभावी भी। जयशंकर प्रसाद के नाटक 'अजातशत्रु' में अजातशत्रु की क्रूरता तथा कठोरता पिता बिंबिसार के प्रति तत्काल समाप्त हो जाती है जब वह स्वयं पिता बन जाता है। बंदीगृह में आबद्ध पिता से क्षमायाचना करने के मूल में अजातशत्रु के पिता बनने का एहसास ही है। 'दंड संहिता' और 'आचार संहिता' में कन्या भ्रूण हत्या को अपराध के दर्जे में स्थापित करने के बावजूद आज भी हमारे देश में मां के गर्भ से निकलकर बेटियां दुनिया नहीं देख पा रही है। ऐसे मारक समय में पिता होना कविता नि:संदेह अपनी अर्थवत्ता बनाए रखने में समर्थ होगी। मर्दवादी समाज में शिशु कन्या के प्रति नया नजरिया कायम करना कवि का उद्देश्य हो सकता है। खुशी की बात है कि इतने व्यापक परिप्रेक्ष्य वाली कविता में स्थूलता कहीं नहीं है। कवि की सूक्ष्म अंतर्दृष्टि तथा तरल संवेदना से यह कविता खिल उठी है।

बेटी की तोतली आवाज में पहली बार 'पा पा पापा' की पुकार सुनकर कवि जितेन्द्र की आनंद की अनुभूति व्यक्त होती है-

"जब पहली बार पुकारता है कोई

चांदनी उतर आती है

मन की मुंडेर पर”[32]

डेढ़ साल की बेटी का चिड़ियों का चह-चहाना सुनकर उल्लास से भर जाना हो अथवा 3 साल की बेटी का गन्ने का रस चूसना हो, कवि ने जिस तन्मयता के साथ चित्रित किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। इस कवि की विशेषताएं यह है कि वह इस बालकीड़ा में खो नहीं जाता बल्कि गन्ने की खेती करने वाले किसानों की बदहाली तथा उनकी संघर्ष गाथा को भी उकेरता है। यह उनकी सजगता है। ‘और उधर’ शीर्षक कविता के निम्नलिखित पंक्तियों को देखा जा सकता है-“गन्ने का रस चुस्ती मेरी यह बेटी/नहीं जानती है उस पसीने के बारे में/जो बहा होता है खेतों की क्यारियों में/वह उस खून के बारे में भी नहीं जानती/जो बहा दिया जाता है कानून और व्यवस्था के नाम पर/वह पैबंद लगे उन सपनों के बारे में भी नहीं जानती/जिनके हकीकत में बदलने का इंतजार करते/गुजर जाती है किसानों की कई पीढ़ियां”[33]

खेतीहार का यह बेटा व्यवस्था, प्रशासन तथा सत्ता के दुष्चक्र की ओर इशारा करता है तो विपदाओं की आशंका भी जाहिर करता है। गन्ने के गुल्ले का रस चूसने वाली बेटी के माध्यम से किसान जीवन के अपूर्ण सपनों तथा सत्ता की चालाकीयों को व्यक्त करने का सुंदर प्रयास है।

असुंदर-सुंदर कविता संग्रह में संकलित कवि की एक उल्लेखनीय कविता है ‘बेटियां’। ठंड की शाम में घर लौटने पर बेटियों का ‘स्वर’ मन में उजास भर देता है। उन्हें बेटीयों के ‘स्वर’ आत्मा की सारी कड़वाहट मिटाने वाला प्रतीत होती है। बेटियों के प्रति बिना अगाध प्रेम किए यह अहसास नहीं हो सकता-

“पर बेटियां नरम धूप की तरह

बनी रहती है सदा

पिता के संसार में

जितनी हंसी होती है बेटियों के अधर पर

उतनी उजास होती है पिता के जीवन में"[34]

बेटियों की हंसी में पिता का संसार समाया हुआ रहता है। पिता की खुशी, विश्वास, आस्था तथा जीवन बेटी की हंसी पर आधारित है। बेटियों के आने से पिता के जीवन में नया सवेरा होता है। बेटियां पिता के जीवन को वसंत की तरह सुगंधित बना देती है। अंतः कहा जा सकता है कि कवि जितेन्द्र के काव्य संसार में बेटी संबंधी कविताओं की विशिष्ट महत्ता है।

कवि जितेन्द्र की बेटियों से संबंधित कविताओं में जीवन के वसंत की धूप, मैं एक चिड़िया हूं पापा और ओ मेरी बेटियों याद रखना, जैसी 23 कविताओं में परिलक्षित होती है कि ये कविताएं मानवता को पल्लवित करने वाली कविताएं है तो स्त्री विमर्श को नया आयाम देने वाली रचनाएं भी है। कवि ने स्वीकार किया है-

"तुम लोगों के आने के बाद

शायद मनुष्य होने लगा हूं

तुम लोगों की हंसी में हंसने लगा हूं"[35]

आज के इस भूमंडलीकृत समाज में बेटियों की दुर्दशा से कवि अपरिचित नहीं है। बिना मानसिकता बदले स्थिति परिवर्तित नहीं हो सकती। पिता की चिड़िया को डरना नहीं, हारना भी नहीं, लड़ना है। अंतः पिता के जीवन को पल-पल सहजती बेटियों से कवि का आग्रह है -

"ओ मेरी बेटियों याद रखना

यदि जीवन में दुख का आलाप दीर्घ होने लगे

तब भी परछाइयों के पीछे पीछे मत भागना

डरना नहीं किसी आईने से!"[36]

महर्षि कण्व की तरह कवि बेटियों को शिक्षा देता है 'ना डरना, ना हारना, लड़ना समय से' बेटी की समझदारी, उसकी छोटी और बड़ी उपलब्धियों को अपनी उपलब्धियां मानने वाला कवि परम प्रसन्न है। 'पुकार' कविता की शुभांगी के बच्चों के प्रति कवि के स्नेहिल स्पर्श को महसूस किया जा सकता है। शुभांगी के पिता के बहाने कवि ने बच्चियों के प्रति कठोरता और लापरवाही बरतनेवालों पर चिंता जाहिर की है। कवि ने समय तथा समाज की विसंगतियों पर गहरा दुख व्यक्त किया है। कवि का आग्रह रहा है पिताओं से-

"उन्हें हंसने दो उनके हिस्से की हंसी

उड़ने दो उनके हिस्से की उड़ान

देखो, गौर से देखो

ये तुम्हारी ही बेटियां है

रानी बिटिया शुभांगी बिटिया सोनी बिटिया

तुम्हारी गलतियों ने

लहूलुहान कर दिया है उनका जीवन"[37]

यह संवेदना का विस्तार है। यह व्यापक सरोकार का नायाब उदाहरण है, उपर्युक्त अवतरित कविता। कवि जितेन्द्र की रागात्मक संवेदना का बीज बेटी, पत्नी और पिता आदि से संबंधित कविताओं में अंकुरित हुआ है। इस बीज के अंकुरण के बाद स्नेह सिचन से यह पल्लवित होता है। परिवार, समाज, राष्ट्र से होते हुए मानुष राग की यात्रा करने वाली कवि की कविताओं की महत्ता प्रतिपादित होती है। स्मृति तथा प्रेम को जीवंता प्रदान करने वाली इन कविताओं की विशिष्टता

पाठकों को लुभाती हैं। परंपरा और आधुनिकता के सुंदर समन्वय को भी यहां रेखांकित किया जा सकता है। अतीत, वर्तमान और भविष्य की सुखद कल्पना से भी ये कविताएं खिल उठती है। पाठकों से संवाद करती हुई ये कविताएं आत्मीय राग प्रस्तुत करती है। लोक तथा विज्ञान को साथ-साथ समेटने की शक्ति भी इन कविताओं में निहित है। स्वप्न और यथार्थ का तालमेल भी यहां विद्यमान है। कवि का स्वप्न स्वस्थ और सुंदर समाज का निर्माण करना है जो बेटियों के माध्यम से ही हो सकता है। ऐसा स्पेस बहुत कम कवि दे पाते हैं-

“जानते हैं पापा, लोग बदलते हैं

तो घर का मौसम भी बदल जाता है”[38]

घर का मौसम बदलेगा तो समाज का भी बदलेगा। दुनिया खुशहाल होगी। यह कवि का सपना है और यह उनकी काव्य दृष्टि भी है।

जितेन्द्र श्रीवास्तव की ‘रमिया’ नामक कविता में रमिया नामक गांव की लड़की का मानना है कि-

“पुरुष को महान मानती है

पुरुष के बिना जीवन बेकार मानती है

मर्द को औरत के मन का लगाम मानती है

अपना सब कुछ उसी का उधार मानती है रमिया

रमिया और भी बहुत कुछ मानती है

लेकिन

अपने भीतर घुसे पुरुष को नहीं पहचानती है।”[39]

रमिया वही सोचती है, जो पुरुष समाज उसे दिखा या फिर समझा रहा है। समाज में रमिया जैसी भोली-भाली लड़कियां बहुत है, जो पुरुष को ही अपनी दुनिया मानती है। "रमिया टीवी पर अर्धनंगी लड़कियों को देखकर/कोसती है शहर की संस्कृति को/समझती है लड़कियां खुद ही नंगी हो गई है/शहर को जहर मानती है रमिया।"[40]

रमिया जैसी लड़कियां पर्दे के पीछे छिपे सच को नहीं देख पाती है। वे इस बात को नहीं जानती की शहर हो या फिर गांव कहीं भी लड़कियां अपनी मर्जी से वस्त्रहीन नहीं होती। मर्द ही उन्हें नंगा करते हैं या फिर पेट उन्हें ऐसा करने के लिए मजबूर करता है। विज्ञापन की दुनिया में, सामान बेचने के लिए, उन्हें एक सामान के रूप में ही इस्तेमाल किया जा रहा है। इस बाजारवादी की संस्कृति से अलग कवि का मानना है कि औरतें न तो बिस्तर होती है और ना ही नुमाइश की चीज, जिनकी कोई मर्जी ना हो। किन्तु आज उपभोक्तावादी संस्कृति में औरत नुमाइश की वस्तु होती जा रही है। इस संस्कृति में उसकी इच्छाओं का कोई मूल्य नहीं।

कवि जितेन्द्र 'पुकार' कविता में उन पिताओं को आवाज लगाते हैं। जो अपनी बेटियों की मर्जी जाने बिना उन्हें किसी भी अनजान खूटे से बांध देते हैं। वे अपनी बेटियों के नाम रखते हैं- शुभांगी, रानी, सोनी। लेकिन उनका जीवन इन नामों के विपरीत चलता है-

"नाम के साथ जुड़े मां-बाप के सपने

कभी भहराकर गिर जाते हैं धरती पर

मिट्टी की दीवारों जैसे

कभी उड़ जाते हैं छप्पर की तरह

जीवन की आंधी में

कभी मेहरा चाहते हैं

बिस्कुट की तरह।"[41]

शुभांगी का जीवन भी बिस्कुट की तरह मेहरा गया है। और उसके सपनों की दीवार भहराकर गिर गई है। उसके सिर से छप्पर उड़ गया है। 29 की उम्र में तीन-तीन बच्चों को गोद में लिए वह दुनिया और जीवन के चौराहे पर खड़ी है। उसके बाप ने उसकी शादी एक ऐसे लड़के से कर दी है जो दिन-रात दारू ढकोसता था और एक दिन दारू ने ढकोस लिया उसे। आज उसे और उसके बच्चे को देखने वाला कोई नहीं है। वह कहीं मात्र ₹700 की मजदूरी करती है। ऐसे समय में ₹700 में चार-चार लोगों को खिलाना बड़ा कठिन काम है। इस कविता में एक बात यह भी ध्वनित होती है कि शायद वह पढ़ी-लिखी भी नहीं है। यदि वह पढ़ी-लिखी होती तो ₹700 की नौकरी नहीं करती।

हम अक्सर अपनी गलतियों को ईश्वर की मर्जी के ऊपर थोप देते हैं और भाग्य का लिखा मान लेते हैं। "लगाते हैं एक ही टेक, आखिर कौन जीत पाया है विधना से।"[42] हमारे इस बहाने के खिलाफ कवि जितेन्द्र का यह मानना है कि-"हम विधना की ओट लेकर/चुनना चाहते हैं एक आसान रास्ता"[43] और यह आसान रास्ता अक्सर हमें पहुंचाता है दुख के किनारे। इसीलिए कविता में पिताओं को आवाज लगाते हुए कवि कहते है कि-

"पिताओं, उठो की बिटिया पुकार रही है

उन्हें मत छोड़ो विधना की मर्जी पर

देखो उनकी भी मर्जी

उनको मत परोसो जीवन भर की लाचारी"[44]

इतना ही नहीं कवि आगे कहते है-

“उन्हें हंसने दो उनके हिस्से की हंसी

उड़ने दो उनके हिस्से की उड़ान

तुम्हारी गलतियों ने, लहूलुहान कर दिया है उनका जीवन।”[45]

कवि नहीं चाहते कि उनका जीवन लहूलुहान हो और उनकी इच्छा है कि उनका अचरा फूलों से हमेशा भरा रहे। बेटियों को ब्याहने में कोई हड़बड़ी या फिर जल्दबाजी नहीं होनी चाहिए।

कवि जब किसी विवाहित लड़की को खुश देखता है तो उनके ‘रक्त में खुशी’ की लहर दौड़ जाती है। इस खुशी में कवि को नीम की पत्तियां भी कड़वी नहीं लगती और उन्हे यह जानकर प्रसन्नता होती है कि उसका पति नीरा पुरुष नहीं, परंतु एक सहयोगी है, मित्र हैं या मित्रवत पति है। यह देख सुन कवि खुद से कहता है-“चलो खुश है एक बेटी किसी की/और भी होगी धीरे-धीरे।”[46]

कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि हमारे समय की “लड़कियां कविता बनना नहीं चाहती।”[47] वे मुक्ति चाह रही है, घर में भी और कविता में भी। यह बहुत सुखद बात है कि कवि के घर तथा कविता दोनों जगह लड़कियां मुक्त है। कवि इस बात को सिर्फ जानते ही नहीं किन्तु मानते भी है कि लड़कियां सजावट का सामान नहीं है, जिससे घर या फिर कविता सजाई जाए। लड़कियां बोझ भी नहीं है। जिन्हें उतारने के लिए किसी घाट लगा दिया जाए। उन्हें अपनी मर्जी से जीने का पूरा हक है, उन्हें अपने जीवन का फैसला लेना ही चाहिए। वह पहरेवाले घरों से मुक्त हो सुकून का जीवन जीना चाहती है। वह चाहती है कि-

“देर से घर लौटने पर

पिता या पति की आंखों में

संदेह नहीं, बस प्रेम देखें।"[48]

वह कहावत में नहीं किन्तु जीवन में देखना चाहती है। अपनी आंखों से 'बिन घरनी घर भूत का डेरा' यानी वे कहावत से बाहर आना चाहती है। आज स्त्री विमर्श के केंद्र में सबसे बड़ा प्रश्न मुक्ति का ही है। हर तरफ और हर तरह से मुक्ति। कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव लड़कियों के इन विचारों का आगे बढ़कर स्वागत करते हैं।

जितेन्द्र अपनी एक दूसरी कविता 'सपनों में परी की तरह' में लड़कियों को गोरखपुर, लखनऊ और अयोध्या न जाने कहां-कहां घुमाते रहते हैं। वे लड़कियां अपनी मर्जी से फिल्में देखती है, सामान खरीदती है और सरयू नदी में नहाती भी है। वे इस बात की चिंता नहीं करती कि लोग उनके बारे में क्या सोचते हैं या फिर क्या कहेंगे?

जितेन्द्र 'शहर' कविता के माध्यम से एक ऐसे समाज का सपना देखते हैं, जहां लड़कियां अपनी शर्तों पर जीती हो। जहां कोई राजा ना हो, कोई प्रजा ना हो। सब एक दूसरे से प्रेम करते हो। कवि की आंखों में जिस शहर का सपना है-

"उस शहर में कोई किसी का राजा नहीं

कोई किसी की प्रजा नहीं

कोई किसी के अधिकारों में नहीं रहता

कोई किसी पर अत्याचार नहीं करता।"[49]

संदर्भ

1. जितेन्द्र श्रीवास्तव, अनभै कथा,पृ.17
2. संपा. कमलेश वर्मा और सुचिता वर्मा-बेटियां,पृ.32
3. जितेन्द्र श्रीवास्तव, सूरज को अंगूठा,पृ.76
4. जितेन्द्र श्रीवास्तव, असुंदर-सुंदर,पृ.114
5. वही, पृ-69
6. जितेन्द्र श्रीवास्तव, कायांतरण,पृ.69
7. जितेन्द्र श्रीवास्तव, सूरज को अंगूठा,पृ.38
8. वही, पृ.43
9. वही
10. जितेन्द्र श्रीवास्तव, इन दिनों हालचाल,पृ.19
11. वही, पृ.21
12. वही, पृ.23
13. वही, पृ.22
14. जितेन्द्र श्रीवास्तव, अनभै कथा,पृ.26
15. वही, पृ.17
16. वही, पृ.18
17. वही
18. वही, पृ.68
19. वही
20. वही, पृ.69
21. जितेन्द्र श्रीवास्तव, असुंदर-सुंदर,पृ.69
22. वही, पृ.114
23. वही
24. जितेन्द्र श्रीवास्तव, कायांतरण,पृ.69-70

25. जितेन्द्र श्रीवास्तव, असुंदर-सुंदर,पृ.22
26. वही, पृ.70
27. जितेन्द्र श्रीवास्तव, कायांतरण,पृ.45
28. जितेन्द्र श्रीवास्तव, इन दिनों हालचाल,पृ.21
29. वही, पृ.23
30. जितेन्द्र श्रीवास्तव, अनभै कथा,पृ.17
31. वही
32. वही, पृ.26
33. संपा.कमलेश्वर वर्मा सुचिता वर्मा, बेटियां,पृ.32
34. जितेन्द्र श्रीवास्तव, असुंदर-सुंदर,पृ.114
35. वही, पृ.69
36. वही, पृ.70
37. जितेन्द्र श्रीवास्तव, कायांतरण, किताब घर प्रकाशन,पृ.45
38. संपा.कमलेश्वर वर्मा और सुचिता वर्मा, बेटियां,पृ.68
39. जितेन्द्र श्रीवास्तव, इन दिनों हालचाल,पृ.47
40. वही
41. जितेन्द्र श्रीवास्तव, कायांतरण,पृ.44
42. वही, पृ.45
43. वही
44. वही
45. वही
46. वही, पृ.12
47. जितेन्द्र श्रीवास्तव, अनभै कथा,पृ.70
48. वही
49. वही पृ.82